UNIVERSAL LIBRARY

OU_182262

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—68—11-1-68—2,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 M67J Accession No. H3558

Author मिश्र, विद्यापति

Title ज्योति. 1952.

This book should be returned on or before the date last marked below.

ज्योति

विद्यावती मिश्र

अ[illegible] विभाग

हिन्दी परिषद्, श्रद्धानन्दनगर,
लखनऊ

प्रकाशक
दयाशंकर मिश्र बी० ए०,
सभापति, हिंदी परिषद्,
श्रद्धानंदनगर, लखनऊ

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य—एक रुपया
१९५२

मुद्रक
शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस,
नजीराबाद, लखनऊ

परिषद् की ओर से

हिंदी परिषद के कार्यक्रम में प्रकाशन की भी योजना है, और यह 'ज्योति' उसी दिशा में सर्वप्रथम प्रयास है।

श्रीमती विद्यावती मिश्र से हमारे हिंदी के पाठक अपरिचित नहीं; प्रायः हिंदी की सभी पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। हमारी हिंदी परिषद की यह सदस्या हैं। आपकी इस कृति को प्रकाशित करने में परिषद गौरव का अनुभव करती है।

परिषद का जीवन-काल लगभग तीन वर्ष का है और कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हुए उसे एक वर्ष से कुछ ही अधिक समय हुआ है। फिर भी इस अल्प समय में पुस्तकालय, रात्रि पाठशाला एवं अन्य सामयिक आयोजनों द्वारा इसने हिंदी के प्रचार का जो प्रयत्न किया है वह सर्वविदित है। सुरुचिपूर्ण साहित्य के प्रकाशन द्वारा जनसाधारण के लिए एक सत्साहित्य का प्रादुर्भाव करने की परिषद् की अभिलाषा है।

प्रथम प्रयास में अपूर्णताएं संभव हैं, फिर भी श्रद्धेय भाई लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय' एवं श्री महावीरप्रसाद शुक्ल के अपूर्व सहयोग से उनकी मात्रा बहुत कम हो गई है।

परिषद् की यह 'ज्योति' आपके सम्मुख है।

श्रावणी,
२००८

दयाशंकर मिश्र,
सभापति

आत्म-निवेदन

साहित्य-देवता के चरणों में यह मेरी प्रथम संग्रहीत अंजलि है। इन पंक्तियों को प्रस्तुत करते हुए जहाँ एक ओर मैं सहम-सी रही हूँ, दूसरी ओर उत्सुकता-युक्त आशा का भी रह-रह कर संचार हो रहा है। सहम इसलिए कि अगणित वर्तिकाओं से ज्योतित हिन्दी-जगत में मेरी क्षीण 'ज्योति' को क्या स्थान मिल सकेगा, और आशा यह कि देव-मंदिर में भक्त की भावना का ही महत्व होता है, नैवेद्य का स्थान गौण है।

अभी मेरी कविता का उषा-काल है। आगे बढ़ने की स्वाभाविक आकांक्षा मेरे अन्तस में तो है, पर वह तभी पूर्ण हो सकती है जबकि मेरे पूर्ववर्ती मेरी अंगुली पकड़ और भारती के सब भक्तों के आशीर्वाद का मुझे संबल मिले। 'ज्योति' को लेकर मैं उसीकी याचना में द्वार पर आ खड़ी हुई हूँ।

इस अवसर पर मैं उन सब सम्पादक बन्धुओं एवं स्नेही परिजनों के प्रति कृतज्ञभाव से नत हूँ जिन्होंने मुझे प्रेरित और प्रोत्साहित किया। उन सबका अलग-अलग स्मरण तो यहाँ सम्भव नहीं किन्तु सर्वश्री लीलाधर शर्मा, 'पर्वतीय' ज्ञानेन्द्र सक्सेना, श्री निवास शास्त्री एवं 'कमल' साहित्यालंकार का विशेष आभार स्वीकार किये बिना मैं रह भी नहीं सकती।

अग्रज पं० कैलाशनाथ प्रियदर्शी एम० ए० ने पांडुलिपि पढ़कर अनेक मूल्यवान सुझाव दिये तथा पं० दयाशंकर मिश्र ने प्रकाशन का भार वहन किया जिसके लिए मूक आभार प्रदर्शित करने के अतिरिक्त मैं और कर ही क्या सकती हूँ!

—विद्यावती

बहिन महादेवी वर्मा को

जब से मैंने सुना कि दीदी तुम कविता की रानी,
तब से तुमको खोज रही थी इन गीतों की वाणी,
एक दिवस सहसा ही तुमको अपने सम्मुख पाकर,
ले आई मैं कर-कमलों तक जीवन-'ज्योति' जलाकर,
अपने ही हाथों से रख दो इसको तुम जग-पथ पर।
जिससे बिखरे प्रति कण-कण में सत्य और शिव-सुंदर॥

— विद्यावती

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	कविता का शीर्षक			पृष्ठ संख्या
१.	देव ! तुम्हारी ज्योति अमर हो !	....	....	९
२.	किसी को अपने सम्मुख देख ··	....	....	१०
३.	बहुत दूर अब हार से और जय से····	....	....	११
४.	गीत की कुछ पंक्तियां ही गुनगुनाना !	....	....	१२
५.	अभी कुछ और जल दीपक ···	....	....	१३
६.	और कोयल बोलती है !	....	....	१४
७.	देख रहा जो कुछ, वह तेरे ही भावों	···	....	१५
८.	रुको नहीं !	....	....	१६
९.	अँधेरी रात में कोयल ···	···	....	१७
१०.	प्रकाश को प्रणाम है !	....	....	१८
११.	बरसे बिना लौट मत जाना····	....	....	१९
१२.	याद तुम्हारी आई ! मेरे गीत बने !	....	....	२०
१३.	कुछ तो प्राण कहो !	....	....	२१
१४.	स्वागत प्रिय नूतन वर्ष, तुम्हारा स्वागत !	....	....	२२
१५.	साधना मेरी अधूरी !	....	....	२३
१६.	अनेकों ही आघात सहे !	....	....	२४
१७.	किसी की याद करने को····	....	....	२५
१८.	जेठ की जलती दुपहरी ढल रही है !	....	....	२६
१९.	इन गीतों ने तुमको बांधा !	....	....	२७
२०.	कभी आया मधुमास नहीं !	....	....	२८
२१.	तुम मेरे मन की थाह नहीं ले पाये !	....	....	२९
२२.	उसकी हार सौ-सौ बार !	....	....	३०
२३.	देव तुम मैं हूँ पुजारिन !	....	....	३१
२४.	यह सारा सुख दुख तेरे ही····	....	....	३२
२५.	मना रही हूँ नीद बन सके····	....	....	३३
२६.	देखो सांझ चली !	....	....	३४
२७.	बोल मेरी प्यारी कोयल····	....	....	३५
२८.	लो चला दिया असाढ़····	....	....	३६

क्रम संख्या	कविता का शीर्षक	पृष्ठ संख्या
२९.	जन्म पर्व इस ओर····	३७
३०.	कांटे नहीं पंथ पर अपनी ···	३८
३१.	किसी को देखने की कामना ···	३९
३२.	मैं प्रतिपल खोजा करती हूँ····	४०
३३.	कौन है पुकारता !	४१
३४.	मेरी ममता को ज्ञान मिले !	४२
३५.	याद करने में हो यदि दद	४३
३६.	रुकें कभी नहीं चरण !	४४
३७	गीत मेरे स्वर तुम्हारा !	४५
३८.	आतप आज मिली सावन से !	४६
३९.	प्राण ! बदल दो राह समय की	४७
४०.	इनको कौन करता प्यार !	४८
४१.	यदि प्राणों को जीवित रहने की इच्छा है····	४९
४२.	मुक्ति न मन की दुर्बलता में !	५०
४३.	दूर रहकर भी तुम्हारे पास !	५१
४४.	निराकरण यदि कर न सको ···	५२
४५.	गीत तुम, मैं गीत की लय !	५३
४६.	लिखते-लिखते हाथ थक गये	५४
४७.	तुम आओ !	५५
४८.	अधूरा वह ही लक्ष्य रहा !	५६
४९.	दूर है उपसंहार अभी	५७
५०.	पूछ रहा है जग का कण-कण !	५८
५१.	कभी कभी मंजिल पा लेना····	५९
५२.	दर्द की पहचान यह आँसू नहीं हैं ···	६०
५३.	धीरे-धीरे लगी उतरने ···	६१
५४.	यह पद नहीं रुकेगा फिर भी !	६२
५५.	चल रहा है जिन्दगी का कारवां !	६३
५६.	अधूरे रह जायेंगे गीत !	६४

देव ! तुम्हारी ज्योति अमर हो !

देख सके जिससे भूला मन,
वह विवेक की राह पुनीता;
जिसको पावन करती आई,
युग-युग से रामायण गीता;
मुखरित जिसके प्रति कण-कण से, दिव्य शांति समता का स्वर हो !

जिससे आदि काल से व्यापक,
जग का अन्धकार मिट जाये;
सत्यं शिवं सुन्दरं द्वारा,
मानव निज आदर्श बनाये;
मानवता के पद पखारने को, बहती कल काव्य लहर हो !

इसको ही पाथेय बना कर,
युग-युग तक नर चलता जाये;
लक्ष्य न नयनों से विचलित हो,
बाधा से मन हार न पाये;
विमल विश्व मंदिर में इसकी, आभा अक्षय हो अक्षर हो !

किसी को अपने सम्मुख देख, विनय से झुक जाता है शीश !

चरण को छू लेती है दृष्टि,
चरण-रज को नयनों की वृष्टि,
कल्पना को अंतर की टीस !
किसी को अपने सम्मुख देख, विनय से झुक जाता है शीश !!

शाप बन जाते हैं वरदान,
विमोहित हो जाते हैं प्राण,
तिमिर ही बन जाता रजनीश !
किसी को अपने सम्मुख देख, विनय से झुक जाता है शीश !!

पंथ को मिल जाता है ध्येय,
साधना पा लेती है श्रेय,
मुझे मिल जाता है आशीष !
किसी को अपने सम्मुख देख, विनय से झुक जाता है शीश !!

बहुत दूर अब हार से और जय से हृदय हो चुका है !

न अन्तर मुझे अस्त में या उदय में,
न अन्तर मुझे चेतना में निलय में,
न अन्तर मुझे साधना में प्रणय में,
न अन्तर मुझे है सृजन या प्रलय में,
नियति भूमि पर, कर्म ही भाग्य-फल के विटप बो चुका है !

कभी तुष्टि ही प्यास बन बोलती है,
कभी प्यास जल वृष्टि को तोलती है,
बहुत मर्म प्रति आह भी खोलती है,
बहुत दर्द ले श्वास यह डोलती है,
हृदय सब भुगत, शान्त सा हो गया है, बहुत रो चुका है !

मनुज हो न यदि पीर तुम झेल पाये,
नहीं शूल पर पैर तुमने बढ़ाये,
जरा सा पड़ा बोझ कंधे झुकाये,
बदल भूमि का भाग्य यदि तुम न पाये,
समझ विश्व लेगा कि तुममें छिपा देवता सो चुका है !

गीत की कुछ पंक्तियाँ ही गुनगुनाना !

देख लूं पतझार में मधुमास जिससे,
देख लूं भूला हुआ इतिहास जिससे,
देख लूं मैं भूमि पर आकाश जिससे,
देख लूं मैं काव्य में विश्वास जिससे,
देख लूं मैं अश्रु भर कर मुस्कराना !

कल्पना कर लूं कि प्रिय तुमने पुकारा,
कल्पना कर लूं कि कर तुमने पसारा,
कल्पना कर लूं मिला मुझको सहारा,
कल्पना कर लूँ मिला मुझको किनारा,
कल्पना कर लूँ तुम्हारा पास आना !

सुन जिसे मैं और सब कुछ भूल जाऊँ,
सुन जिसे मैं और कुछ सुन ही न पाऊँ,
सुन जिसे शत कण्ठ से जग को सुनाऊँ,
सुन जिसे रह दूर भी मैं पास आऊँ,
सुन जिसे प्रिय याद आये, युग पुराना !

अभी कुछ और जल, दीपक ! शलभ में प्राण बाकी है !

अभी वह तिलमिलाता है,
अभी वह छटपटाता है,
अभी उड़ दूर जाता है,
अभी लय हो न पाता है,
इसी से जान लेती हूँ, अभी निर्वाण बाकी है !

अभी तो चेतना बाकी,
किसी की प्रेरणा बाकी,
अभी अवहेलना बाकी,
अभी है वेदना बाकी,
अभी तो आह के स्वर में, मिलन का गान बाकी है !

व्यथा में प्रेम पलने की,
जलाने और जलने की,
हठीले विश्व के सम्मुख अभी पहचान बाकी है !

·····और कोयल बोलती है !

आगया मधुमास, पतझर जा रहा है—
और कोयल बोलती है !

स्वप्न के संसार की सब कल्पनाएँ,
सत्य के संसार की बनती कथाएँ,
बुझ गई है प्यास सरिता बह रही है—
और नौका डोलती है !

अश्रुओं के गीत बनते हैं सितारे,
आज है मँझधार छू लेती किनारे,
चाँद की हलकी किरण निज लघु करों से—
आज घूँघट खोलती है !

मिल रही है शांति ममता जा रही है,
पर नियत अपनी व्यथा बतला रही है,
प्रकृति ऋतुओं के सुनहले आवरण पर—
मानवों को तोलती है !

देख रहा जो कुछ, वह तेरे ही भावों की छाया !

तुझ में ज्योति इसी से ही तो सूरज चमका करता ,
तुझ में शान्ति इसी से चन्दा शीतलता है भरता ,
यह कोमल आकर्षण, तेरे भव्य हृदय की माया !
देख रहा जो कुछ, वह तेरे ही भावों की छाया !!

हिमगिरि तुंग विशाल इसी से झुका न तेरा मस्तक ,
सरितायें गतिवान चरण की गति न सकी इससे रुक ,
नव-घन बन तूने जग-मरुथल पर जीवन बरसाया !
देख रहा जो कुछ, वह तेरे ही भावों की छाया !!

तेरी एक श्वास में अंकित वासुदेव की गीता ,
तेरा ही विश्वास राम, तेरी श्रद्धा ही सीता ,
तू क्या यह सब भेद अभी तक, जान नहीं है पाया !
देख रहा जो कुछ, वह तेरे ही भावों की छाया !!

रुको नहीं !

यदि मिले पहाड़ वज्र तोड़ दो,
यदि मिले समुद्र वेग मोड़ दो,
रुको नहीं !

पद थकें न प्राण किन्तु थक सकें,
पद रुकें न प्राण किन्तु रुक सकें,
रुको नहीं !

अन्त में विकास या विनाश हो,
पूर्ण साधना सतत प्रयास हो,
रुको नहीं !

तुम रुके तो विश्व की प्रगति रुकी,
मनुष्य की अचल विजय-ध्वजा झुकी,
रुको नहीं !

अँधेरी रात में कोयल कहीं बोले तो क्यों बोले !

उसे तो आम की सौरभ सुरीली प्रेरणा देती ,
उसे मधुमास की सिहरन सजीली चेतना देती ,
न दोनो हों भला फिर वह रसीला कंठ क्यों खोले !
अँधेरी रात में कोयल कहीं बोले तो क्यों बोले !!

वृथा वह गीत जिसको दूसरे सुन ही नहीं पायें ,
पवन की शान्त लहरों में अनोखे रस बिखर जायें ,
निरंतर शून्य में अपनी व्यथा का भार क्यों घोले !
अँधेरी रात में कोयल कहीं बोले तो क्यों बोले !!

प्रकृति की गोद में रति बन नवल आमोद भरती है ,
जगत के प्रति सजग कण को दया का कोप करती है,
निराशा से स्वयं की सिद्धि का उपहार क्यों तोले !
अँधेरी रात में कोयल कहीं बोले तो क्यों बोले !!

प्रकाश को प्रणाम है !

पुनीत दीप-मालिका छिपी न अंधकार से,
न जीत रात ही सकी प्रभात की पुकार से,
अजय मनुष्य के चरम विकास को प्रणाम है।
प्रकाश को प्रणाम है !!

न तीर छू सकी कभी अपार सिंधु की लहर,
अनेक रूप में सजीव विंदु भी गई छहर,
छिपी हुई अतृप्त सीप-प्यास को प्रणाम है।
प्रकाश को प्रणाम है !!

विजय मिली, विजय मिली प्रदीप्त चेतना हुई,
अथाह कर्म-राशि से पुनीत प्रेरणा हुई।
अजेय ज्योति-पुंज स्वर्ण-हास को प्रणाम है,
प्रकाश को प्रणाम है !!

बरसे बिना लौट मत जाना कजरारे बादल !

बहुत देर से गरज रहे हो,
बिजली बन कर तरज रहे हो,
किन्तु भूमि पर अभी न छोड़ा एक बूँद भी जल !
कजरारे बादल !!

तुम्हें जेठ ने दूर भगाया,
पर असाढ़ ने पास बुलाया,
करती है संकेत निरंतर सावन की हलचल !
कजरारे बादल !!

खेतों में जीवन बन बरसो,
जग को पुलकित लखकर हरषो,
सौरभमय उपवन-सा करदो मानव का मरुथल !
कजरारे बादल !!

याद तुम्हारी आई ! मेरे गीत बने !

रूप तुम्हारा ही मेरी तस्वीर बनी,
और तुम्हारी ममता मेरी पीर बनी,
पलकों की पहुनाई को आँसू कितने !
याद तुम्हारी आई ! मेरे गीत बने !!

अधरों की मुस्कान काव्य में रस भरती,
मोहकता वाणी को मंगलमय करती,
भावों की अरुणाई से हैं छन्द सने !
याद तुम्हारी आई ! मेरे गीत बने !!

गीतों में वह युग भी हो साकार गया.
गीत तुम्हें हो कोमल कारागार गया,
विस्मृति ने अंगड़ाई ली जागे सपने !
याद तुम्हारी आई ! मेरे गीत बने !!

कुछ तो प्राण कहो !

जिससे मेरे जीवन-पथ पर फिर सुनसान न हो !

वाणी के सँग तारे बोलें,
रजनी उज्वल घूँघट खोले,
शशि की ऐसी ज्योति जगे जिसका अवसान न हो !
कुछ तो प्राण कहो !!

प्रति स्वर एक ज्योति के सम हो,
पद का केवल गति ही क्रम हो,
मुझे कहाँ जाना है इसका मुझ को ज्ञान न हो !
कुछ तो प्राण कहो !!

बस केवल मैं सुन ही पाऊँ,
तृप्ति इसी में मैं पा जाऊँ,
फिर तुम क्या कहते हो चाहे यह अनुमान न हो !
कुछ तो प्राण कहो !!

स्वागत प्रिय नूतन वर्ष, तुम्हारा स्वागत !

स्वागत ! उपवन की सुरभि भरी अमरायी,
स्वागत ! कोकिल की वाणी की तरुणायी,
स्वागत ! कलियों की अलियों की अंगड़ायी,
स्वागत ! सुषमा का जो कण-कण में छायी,
जड़-चेतन के उत्कर्ष, तुम्हारा स्वागत !

चल दिया पंथ पर फिर से मौन प्रवासी,
ज्यों बोधिसत्व के लिये युवा सन्यासी,
मिट गयी चरण को बाँधे हुये उदासी,
दृढ़ निश्चय का व्रत लिये बढ़ा सन्यासी,
जागो, भीषण संघर्ष, तुम्हारा स्वागत !

भूली अतीत मैं, वर्तमान को छोड़ा,
मैंने भविष्य का रुख सदैव ही मोड़ा,
है भग्न-भाग्य का घट भी मैंने फोड़ा,
फल की इच्छा बन सकी न पथ पर रोड़ा,
आओ, चलने का हर्ष, तुम्हारा स्वागत !

साधना मेरी अधूरी !

प्राप्ति की अब भी पिपासा ,
पथ पर अब भी निराशा ,
इसलिये समझी कि अब तक अर्चना मेरी अधूरी !
साधना मेरी अधूरी !!

चाहती अब भी तुम्हारे
पुण्य पद के पास आना ,
व्यर्थ इस मन को हुआ—
अद्वैत का दर्शन सिखाना ,
खल रही मन की निकटता किंतु तन की आज दूरी !
साधना मेरी अधूरी !!

हाथ आगे को बढ़ाया ,
शीश नीचे को झुकाया ,
प्राप्ति का संदेह तब तो याचना मेरी अधूरी !
साधना मेरी अधूरी !!

अनेकों ही आघात सहे !

प्रतिक्षण ही मेरी मंजिल पर नया मोड़ लाये,
पथ के प्रति पाषाण प्राण से आकर टकराये,
प्रति डग के ही साथ यहाँ मेरा संघर्ष हुआ—
नहीं पर मेरे नयन बहे !
अनेकों ही आघात सहे !!

शूल स्वयं ही मेरे पथ पर बन पाथेय गये,
और भूल के बंधन ही बन मुझ को ध्येय गये,
शूल भूल दोनों ही मेरे अब बन मीत गये—
अपरिचित कोई नहीं रहे !
अनेकों ही आघात सहे !!

प्रति धक्के के साथ और भी छाती कड़ी हुई,
मैं गति के अनुकूल, न मुझ को कहना छुईमुई,
नियति-चक्र के तांडव का भय मुझ को क्या होगा—
पूर्व ही मेरे महल ढहे !
अनेकों ही आघात सहे !!

किसी की याद करने का कहाँ अवकाश है जग को !

न सूरज व्योम में रुकता
न तारे देखते रुक कर,
न बादल पूछता है दूसरों की
बात ही झुक कर,
यहाँ पर अश्रु नयनों में, अधर में प्यास है जग को !
किसी की याद करने का कहाँ अवकाश है जग को !

जला कर रात भर निज को
जिसे दीपक बुलाता है,
सुनहले स्वप्न को तज कर
न वह ही पास आता है,
किसी की कामना भी बन गई दृढ़-पाश इस जग को !
किसी की याद करने का कहाँ अवकाश है जग को !

न कलि को देखती मुड़कर
सुरभि की चंचला लहरी,
सुमन को देखता मुड़ कर—
न अलि, मधु का मधुर प्रहरी,
किसी का मोह बन जाता स्वयं सन्यास है जग को !
किसी की याद करने का कहाँ अवकाश है जग को !

जेठ की जलती दुपहरी ढल रही है !

धूप मे सूरज थका है,
छाँह में जाकर रुका है,
म्लान हो कर कुछ झुका है,
किन्तु दिन की बात अब भी चल रही है !
जेठ की जलती दुपहरी ढल रही है !!

चौंक कर जागा प्रवासी,
ओंठ गीले दृष्टि प्यासी,
आँख मल हरता उदासी,
यह थकावट ही पसीना बन सवेग फिसल रही है !
जेठ की जलती दुपहरी ढल रही है !!

सुमन मुरझाये नहीं हैं,
पात कुम्हलाये नहीं हैं,
वृक्ष थक पाये नहीं हैं,
क्योंकि उनके हृदय में करुणा अनंत पिघल रही है !
जेठ की जलती दुपहरी ढल रही है !!

इन गीतों ने तुम को बाँधा !

पद में लय का गुंफन डाला,
उर पर भावों की जयमाला,
प्रिय मुझसे भी अधिक इन्होंने तुमको पाने का व्रत साधा !
इन गीतों ने तुम को बाँधा !

इनके छन्दों के बंधन से,
यति फिर गति पर सधे चरण से,
हो जाती है दूर तुम्हारे तक आने की सब पथ—बाधा !
इन गीतों ने तुम को बाँधा !

बीच-धार जीवन सरिता की,
मध्य-विन्दु मेरी कविता की,
मेरे और तुम्हारे में है रखे अभी भी अन्तर आधा !
इन गीतों ने तुम को बाँधा !

·····कभी आया मधुमास नहीं !

पतझर के सूनेपन से मैं भय कैसे मानूँ—
कभी आया मधुमास नहीं !
उड़ जाती है सुरभि कटीली डाली रह जाती,
अमृत सब पीते हैं विष की प्याली रह जाती,
सुमनों का वैभव लेने को अलि दल आता है—
धूल की उसको प्यास नहीं !
खिले हुये चन्दा को पागल राहु पकड़ लेता,
ज्योति पुंज सूरज को बन कर केतु जकड़ लेता,
किन्तु दूज के चाँद और ढलते दिन के रवि को—
बाँधता कोई पाश नहीं !
जब आकर्षक रूप भीख यौवन से लेता है,
प्रेम वासना के कानों में कुछ कह देता है,
किसी व्रती को देख मोह ने मर्यादा तोड़ी—
हिला फिर भी सन्यास नहीं !

तुम मेरे मन की थाह नहीं ले पाये !

तुमने कविता की गागर इसमें डाली,
पर वह तो लौटी खाली की ही खाली,
तुम उसमें मेरी आह नहीं भर लाये!
तुम मेरे मन की थाह नहीं ले पाये!!
है इस निर्झर का स्रोत तुम्हारे में ही,
मेरी करुणा जीवन पाती तुम से ही,
मृग बन कस्तूरी यहाँ ढूँढ़ने आये!
तुम मेरे मन की थाह नहीं ले पाये!!
मैं कैसे अपनी बात स्वयं बतलाऊँ,
मैं क्या हूँ! कैसे यह तुम को समझाऊँ,
जब समझ स्वयं को समझ न मुझ को पाये!
तुम मेरे मन की थाह नहीं ले पाये!!

उसकी हार सौ-सौ बार !

प्यार जो ले कर न दे धिक्कार सौ-सौ बार !!

बोलो कौन सा यह न्याय,
करके एक को असहाय,
करके एक को निरुपाय,
फिर भी रख चरण जो रुक गया लख सामने अंगार !

रोके कब रुका दृग-नीर,
तन की चाह, मन की पीर,
श्वासों का अनत समीर,
फिर भी भीख-सा जो मांगता है मुक्ति का अधिकार !

सीमित हो न पाई प्यास,
इससे मुक्त कब आकाश,
कब है भूमि पूर्ण निराश,
फिर भी जो समझते हैं न जल को प्यास का उपचार !

देव तुम मैं हूँ पुजारिन !

प्रिय तुम्हारे द्वार पर की देहली, पुजती रही पुजती रहेगी,
कमल-चरणों पर, किसी के आँसुओं की धार बहती ही रही बहती रहेगी,
और मैं पाती रहूँगी तुष्टि प्रतिक्षण—
प्रिय तुम्हारे भक्त गिन गिन ;
देव तुम मैं हूँ पुजारिन।

है न मैंने तो अभी तक कुछ चढ़ाया, है चढ़ाने को न कुछभी पास मेरे,
एक ही विश्वास पर मेरा रहा है, नीड़ मेरे और तुम आकाश मेरे,
मैं भवन निर्माण करती हूँ निरंतर—
अर्चना के फूल बिन बिन ;
देव तुम मैं हूँ पुजारिन।

ब्रह्म तुम मैं प्रकृति की आराधना हूँ, दूर हो पाई न, हो पाई नहीं लय,
तुम सुखद संदेश हो मैं हूँ प्रतीक्षा, तुम मिलन का हर्ष हो मैं प्रथम परिचय,
तुम उदय का हास मैं निस्तब्ध संध्या—
रात आती, छूटता दिन ;
देव तुम मैं हूँ पुजारिन।

यह सारा सुख-दुख तेरे ही मन का भ्रम है !

तू रो देता है कह देता सावन है ;
तू हँस देता मधुऋतु का आमंत्रण है !
तेरे ही अनुरूप प्रकृति का सारा क्रम है !
यह सारा सुख-दुख तेरे ही मन का भ्रम है !!

श्वेत-पत्र है नियति कर्म ही लिखता अक्षर ;
मौन भविष्यत किंतु भाव ही भरते हैं स्वर !
शांति एक तेरा ही तो सुखमय संयम है !
यह सारा सुख-दुख तेरे ही मन का भ्रम है !!

तेरे ही तो चरण स्वयं हैं पंथ बनाते ;
फिर उसको ही इष्ट समझ हैं बढ़ते जाते !
तू साधन है तू प्रतिफल है यही नियम है !
यह सारा सुख-दुख तेरे ही मन का भ्रम है !!

मना रही हूँ नींद बन सके कभी न जागरण !

निशीथ बन सके नहीं कभी प्रभात की विभा ,
न अंधकार प्राप्त कर सके प्रकाश की प्रभा ;
उषा-दिनेश का कभी न हो मिलन न हो वरण !
मना रही हूँ नींद बन सके कभी न जागरण !!

कभी न स्वप्न सत्य हों परंतु वे बने रहें ,
न बात वे यथार्थ की कभी सुनें कभी कहें ;
हृदय न मांग ले कठोर कर्म की कभी शरण !
मना रही हूँ नींद बन सके कभी न जागरण !!

शिथिल चरण रहें न पंथ हो न इष्ट लक्ष्य हो ,
विचार शृंखला, अदृश्य लोक, काव्य-कक्ष हो ;
न बुद्धि जग सके, न खुल सकें मुंदे हुये नयन !
मना रही हूँ नींद बन सके कभी न जागरण !!

देखो सांझ चली !

कलरव के नूपुर बजते हैं,
चांदी के तारे सजते हैं,
चांद किरण मचली !
देखो सांझ चली !!

जन-पथ पर बिखरा धुन्धलापन,
धूप गयी है अब छाया बन.
नभ की गोद पली !
देखो सांझ चली !!

संध्या अब रजनी बनने को,
शशि का आलिंगन करने को,
बिखरी गली - गली !
देखो सांझ चली !!

बोल मेरी प्यारी कोयल आया मधुमास है !

झूल रही बौरों से डाली,
प्रति डाली पर मीठी लाली,
तितली घूम रही मतवाली,
प्रमुदित खड़ा हुआ बनमाली,
आज कौन-सा भौंरा आया नहीं कली के पास है !

हरी भरी धरती है सारी,
कुसुमित है सारी फुलवारी,
सौरभ आती प्यारी-प्यारी,
आज नहीं दिखला लाचारी,
हो जाऊंगी मधु तू केवल कहदे मुझमें प्यास है !

जड़ चेतन में जागा यौवन,
जागी है यौवन में सिहरन,
सिहरन में जागी है पुलकन,
पुलकन ले जागा है कवि मन,
डोल गया इस अवसर पर ही तपसी का सन्यास है !

लो चल दिया अषाढ़ आ गया सावन !

घन कहीं-कहीं पर थोड़ा-थोड़ा बरसे,
जिससे आ जायें कृषक खेत पर घर से,
कर देने को पौरुष से वसुधा पावन !
लो चल दिया अषाढ़ आ गया सावन !!

मिट्टी की छाती तोड़ी अंकुर उपजे,
ज्यों कवि का अंतस छिदा और स्वर उपजे,
कहते अवनी पर उतरो कजरारे घन !
लो चल दिया अषाढ़ आ गया सावन !!

फिर जाने किसने भर-भर कर पिचकारी,
चढ़ करके नभ पर है वसुधा को मारी,
कर दिये हरे फिर जिसने विरही के व्रण !
लो चल दिया अषाढ़ आ गया सावन !!

जन्म पर्व इस ओर दूसरी ओर मरण त्योहार !

बीच में है जीवन की धार !!

प्रातः आया तो संध्या का आना आवश्यक ,
प्राची को लखकर रजनी भी जरा न पाई रुक ;
काल का परिवर्तन शृंगार !
बीच में है जीवन की धार !!

रोते कुम्हलाते सुमनों में सौरभ रहा नहीं ,
कल इन से ही क्या परिमल का निर्झर बहा नहीं ;
बिखरते राग भरे नीहार !
बीच में है जीवन की धार !!

मृत्यु, जन्म से इस ही कारण कभी न मिल पाती ,
नहीं प्रलय की व्यापकता है तांडव दिखलाती ;
लिये वैतरणी का उपहार !
बीच में है जीवन की धार !!

काँटे नहीं पंथ पर अपनी भूलें सदा चुभा करती हैं !

नयनों में जो जल-कण बहते,
वे सामाजिक सुख-दुःख कहते,
पर निज अन्तर की पीड़ायें श्वासों में उलझा करती हैं !
काँटे नहीं पंथ पर अपनी भूलें सदा चुभा करती हैं !!

भीतर ले जाने में उलझन,
बाहर ले आने में बन्धन,
अधरों पर गीतों के द्वारा वे न कभी सुलझा करती हैं !
काँटे नहीं पन्थ पर अपनी भूलें सदा चुभा करती हैं !!

यह कुछ ऐसी अजब पहेली,
सदा पुरानी सदा नवेली,
तरह-तरह से तरह-तरह के जन-मन बीच बुझा करती है !
काँटे नहीं पन्थ पर अपनी भूलें सदा चुभा करती हैं !!

किसी को देखने की कामना·····

किसी को देखने की कामना जब जाग जाती है !
न जाने नींद कैसे लोचनों से भाग जाती है !!

निराशा राह बनती और उस पर याद चलती है ,
नयन के आँसुओं में भी व्यथा की आग जलती है ,
हृदय की चेतना बन श्वास ओठों को हिलाती है !
किसी को देखने की कामना जब जाग जाती है !!

मिलन का फूल मुरझाता विरह के शूल खिलते हैं ,
गला रुँधता न मुख से शब्द कोई भी निकलते है ,
न कह पाते तड़फते प्राण, रसना तिलमिलाती है !
किसी को देखने की कामना जब जाग जाती है !!

तभी मैं जानती हूँ कौन यह संसार कैसा है ,
सधा जो मोह पर रहता भला वह प्यार कैसा है ,
नियति यह देखती है देख करके मुसकराती है !
किसी को देखने की कामना जब जाग जाती है !!

मैं प्रति पल खोजा करती हूँ साथी दर्द भरे इस दिल का !

रिक्त हृदय में प्रतिध्वनि भरता
मेरा रोदन स्वर एकाकी,
सुनने जिसको आया करती
मूक - सफेदी ढली निशा की,
और उषा में भी न उदय पा सकने वाली बेबस कलिका !
मैं प्रति पल खोजा करती हूँ साथी दर्द भरे इस दिल का !

यह आँसू अभिशाप किसी के
क्षण दो क्षण मुसका देने को,
किसी अन्य की प्रतिमा को
भ्रम वश दो क्षण अपना लेने को,
वे भूले जिनके ही कारण जग ने ताड़ बनाया तिल का !
मैं प्रति पल खोजा करती हूँ साथी दर्द भरे इस दिलका !

प्रिय मुझको हो गया किसी के—
पाने के हित चलते रहना,
ज्योतिहीन अंतर की ज्वाला—
में चुप रह कर जलते रहना,
होश कहाँ मुझको अब पथ का, पग का, भाव हीन मंजिल का !
मैं प्रतिपल खोजा करती हूँ साथी दर्द भरे इस दिल का !

कौन है पुकारता !

दूर सिंधु पार से,
घोर अन्धकार से,
कौन है निहारता !
कौन है पुकारता !!

हो रहा प्रकाश है,
व्यर्थ क्यों निराश है,
है मुझे रहा बता !
कौन है पुकारता !!

तू मनुष्य के लिये—
सदा मरे, सदा जिये,
प्राप्त कर मनुष्यता !
कौन है पुकारता !!

मेरी ममता को ज्ञान मिले !

मृदु भावों की लोलुपता को
संयम की पावन शक्ति मिले,
सौरभ के प्यासे अन्तर को
चिर शांति-दायिनी भक्ति मिले,
इन भूले-भटके चरणों को निश्चित पथ का अनुमान मिले !
मेरी ममता को ज्ञान मिले !

मेरे मन की दुर्बलता को
दृढ़ निश्चय का आधार मिले,
मरु से पीड़ित मानव-मृग को
मेरी करुणा की धार मिले,
विश्वास-सीप को कर्मों की चिर-मुक्त स्वाति का दान मिले !
मेरी ममता को ज्ञान मिले !

विश्राम नहीं इन चरणों को
संदेश मिले नव जागृति का,
प्रति पग मेरा इतिहास लिखे
युग की पावनतम् संस्कृति का,
अभिशापों को शीतल कर देने का मुझको वरदान मिले !
मेरी ममता को ज्ञान मिले !

याद करने में हो यदि दर्द, भूल जाना है भूल नहीं !

ज्योति यदि बन जाये अंगार,
तिमिर दे शीतलता सुकुमार,
फूल से तितली हो बेचैन—
बुरा तब तो है शूल नहीं!
भूल जाना है भूल नहीं!

रंगीले नभ चुम्बी प्रासाद,
भरें यदि जीवन में अवसाद,
बने यह दुखद पतन के द्वार—
भली क्या इन से धूल नहीं!
भूल जाना है भूल नहीं!

एक शोषण ही जिनका ध्येय,
दंभ करने का जिनको श्रेय,
बता दो इन अनुकूलों से—
हितैषी क्या प्रतिकूल नहीं!
भूल जाना है भूल नहीं!

रुकें कभी नहीं चरण !

अपार हिम-शिखर सदैव पंथ पर अड़ा रहे,
अथाह सिंधु मुक्त राह रोक के पड़ा रहे,
बनी रहे परन्तु साधना पुनीत आमरण !
रुकें कभी नहीं चरण !!

न फूल मांग किंतु भय कभी न मान शूल से,
छिपा न तू भविष्य शून्य भाग्य के दुकूल में,
सदैव शक्तिवान ने किया है भूमि का वरण !
रुकें कभी नहीं चरण !!

पुकार भानु कह रहा प्रभात है, प्रकाश है,
नवीन राह, प्रेरणा नयी, नया प्रयास है,
नवीन विश्व का नवीन कुंभकार कर सृजन !
रुकें कभी नहीं चरण !!

गीत मेरे स्वर तुम्हारा !

हैं न जाने किस तरह से अर्चना के फूल मेरे गीत बनते,
हैं न जाने किस तरह से आह के स्वर हैं मधुर संगीत बनते,
और बनता है न जाने किस तरह से,
पंथ मेरा पग तुम्हारा।

देख है पाया न कोई आज तक भी इस हृदय के भाव मेरे
शूल के संघर्ष से जो जिंदगी के हैं सदा रहते हरे वे घाव मेरे
किंतु इनके बीच में मिलता रहा है,
एक संबल का सहारा।

ध्येय तक पहुँचूँ न इसकी है अधिक अभिलाष मेरी आश मेरी
लक्ष दिखता ही रहे कुछ दूर पर तो है इसीमें तुष्टि मेरी प्यास मेरी
व्योम कितना भी विशद हो, किंतु हो प्रिय.
एक दीपक एक तारा।

आतप आज मिली सावन से !

नयनों में जल उर में ज्वाला,
अंतर के पट पर अंधियाला,
धुंधराले घन से !
आतप आज मिली सावन से !!

पद में पीड़ा, पथ में धड़कन,
गति में यति, दृढ़ता में सिहरन,
पहले कंपन से !
आतप आज मिली सावन से !!

दोनों ने मर्यादा तोड़ी,
दोनों ने सीमायें छोड़ी,
नव आकर्षण से !
आतप आज मिली सावन से !!

प्राण ! बदल दो राह समय की !

तुम कर्मों से भाग्य बदल दो,
भावी को निश्चय से बल दो,
तुम अपने निर्भय हाथों से शिरा पकड़ लो अजय प्रलय की !
प्राण ! बदल दो राह समय की !!

बात करो नौका खेने की,
उस तट तक पहुँचा देने की,
बंदी करलो मंझधारों को तुम सत्ता मानो न निलय की !
प्राण ! बदल दो राह समय की !!

हार ! हार कर स्वप्न असंभव,
एक अटल अनुभव हो अभिनव,
स्वयं मनुजता परिभाषा है जीवन की जागृति की जय की !
प्राण ! बदल दो राह समय की !!

इनको कौन करता प्यार !

शूल से होता नहीं यदि सुमन का शृंगार !

यदि सदा रहता धरा की गोद में मधुमास,
तारकों से यदि सदा रहता भरा आकाश,
पृष्ठ-पट बनता न यदि उमड़ा हुआ पतझार !
इन को कौन करता प्यार !!

यदि उषा आती सदा हंसती हुई चुपचाप,
यदि झलक पाता न रूठी रात का संताप,
मद भरी हरिताभ भू भरती नहीं नीहार !
इन को कौन करता प्यार !!

साथ में यदि काव्य के होती न क्षीण कराह,
कल्पना के साथ में होता न अंतर्दाह,
रागिनी के साथ यदि होता न हाहाकार !
इन को कौन करता प्यार !!

यदि प्राणों को जीवित रहने की इच्छा है—

तब तो वे कर मरण वरण लें !

बुझते दीपक सी हिलती डुलती बाती से,
परदेशी प्रियतम की दर्द भरी पाती से,
किसी पराजित मनु की पथरीली छाती से,
स्नेह-रहित दीपक को धुँधली ज्योति किरण दें !

यह मिटने का पर्व अनश्वर करता नर को,
है अथाह जल सिन्धु बनाती चपल लहर को,
है शाश्वत कर देता संसृति में अक्षर को,
देख अन्त को निकट आदि की क्यों न शरण लें !

फल के प्रति निर्वेद प्राप्ति को सुगम बनाता,
उसके प्रति उन्माद मुक्त को विषम बनाता,
हाथों की सीमा को अजय अगम्य बनाता,
मिलन असंभव जान विरह कर क्यों न मिलन लें !

मुक्ति न मन की दुर्बलता में !

मुक्ति प्यार से ऊपर उठ कर,
जीत हार से ऊपर उठ कर,
प्रिय भावों को अपने तक ही सीमित रखने की क्षमता में !
मुक्ति न मन की दुर्बलता में !!

मुक्ति नहीं रोने गाने में,
मुक्ति नहीं खोने पाने में,
इष्ट पंथ पर बढ़ने वाले चिर चंचल पद की दृढ़ता में !
मुक्ति न मन की दुर्बलता में !!

केवल मुझ तक अपनी ममता
देव नहीं सीमित कर लेना,
हाथों का आधार जिन्हें भी
आवश्यक हो उनको देना,
है असीम तुमको मैं पाऊँ पीड़ित जग की व्यापकता में !
मुक्ति न मन की दुर्बलता में !!

दूर रहकर भी तुम्हारे पास !

कल्पतरु तुम मैं किसी की प्राप्ति की अभिलाष,
दृढ़-व्रती तुम मैं किसी के हृदय का विश्वास;
गीत तुम स्वर में बिखरती मैं लचीली श्वास !

सिंधु से गंभीर तुम मैं नील नभ की चाह,
लक्ष्य तुम उस तक पहुँचती मैं अकेली राह;
कर्म तुम मैं चेतना की चिर-सजग उच्छ्वास !

स्वाति-कण तुम और मैं हूँ सीप का उन्माद,
तुम समय मैं विस्मरण की एक विस्मृत याद;
साधना तुम मैं किसी की साधना की प्यास !

मैं बनी पूजा बने तुम देवता की मूर्ति,
बन गये तुम त्याग मैं मन की मनोरम पूर्ति;
मैं दिशा बन आ गयी जब तुम बने आकाश !

आज तुम सुख स्वप्न हो मैं अधर की मुस्कान,
वीणा तुम प्रति तान की मैं मूक पंचम तान;
कल्पना तुम मैं किसी के काव्य का उल्लास !

निराकरण यदि कर न सको पथ के शूलों का !

तो फिर अपनी राह बदल दो !
शिथिल न होने दो पद गति को,
वह तो सकती बदल नियति को,
उसमें नव-जीवन देने को कुछ थोड़ी सी चाह बदल दो !
तो फिर अपनी राह बदल दो !!

अक्षय है संसृति का सागर,
चाहो जितनी भर लो गागर,
सुख-दुख की, बस केवल सुख में हँसना दुख में दाह बदल दो !
तो फिर अपनी राह बदल दो !!

बिटप पुराने सुमन पुराने,
नीड़ पुराने बिजन पुराने,
बस तुम केवल इतना करदो धूप बदल दो, छाँह बदल दो !
तो फिर अपनी राह बदल दो !!

गीत तुम, मैं गीत की लय !

मैं वही हूँ रूप तुम जिसको न पहिचाने नहीं पहचानते हो,
मैं वही अस्तित्व तुम जिसको नहीं माने न उसको मानते हो,
प्रीति तुम, मैं शून्य संशय !
गीत तुम मैं गीत की लय !

मैं वही हूँ पंथ तुम जिस पर चले, पर है तुम्हें चलना न आया,
मैं वही सुनसान तुम जिससे डरे, पर है बदल उसको न पाया,
रीति तुम, मैं विश्व का भय !
गीत तुम, मैं गीत की लय !

मैं वही हूँ तुष्टि तुम देते रहे, फिर भी न उसको पा सके हो,
मैं वही हूँ स्वर्ग यश गाते रहे, पर भूमि तक उसको नहीं तुम लासके हो,
जीत तुम, मैं हार की क्रय !
गीत तुम, मैं गीत की लय !

लिखते-लिखते हाथ थक गये, गीत कहो तो गाऊँ !

तुम्हें बुलाने को कितने ही गीत-पत्र लिख डाले,
बनी तूलिका बिजली स्याही बन आये घन काले,
विरहिन मलयज पूछ रही मैं तुम्हें कहाँ पर पाऊँ !
लिखते-लिखते हाथ थक गये, गीत कहो तो गाऊँ !

शाश्वत अक्षर से रुचि कर क्या तुम को नश्वर वाणी,
कविता की करुणा में प्रिय कवि के नयनों का पानी,
छन्दों के उद्गार अधर पर कैसे मैं दिखलाऊँ !
लिखते-लिखते हाथ थक गये, गीत कहो तो गाऊँ !

गीतों को पढ़ कर लिखने से अधिक धैर्य मन खोता,
मेरा प्राण नहीं बन पाता पर हीरामन तोता,
है वाणी में शक्ति कहाँ जो तुम को पास बुलाऊँ !
लिखते-लिखते हाथ थक गये, गीत कहो तो गाऊँ !

तुम आओ !

तुम आओ मेरी वीणा तुम्हें बुलाती।

इस वीणा के प्रति तार पंथ बन आये,
भीड़ों ने उस पर रग्वी सजा कर बाती।
कंपन करती संकेत कि तुम आजाओ,
तुम आओ मेरी वीणा तुम्हें बुलाती॥

अब तक इस पर चल चुकी बहुत सी उँगली,
अगणित श्वासें अपना सुख-दुख बतलाती।
मानवता की वाणी लेकर तुम आओ,
तुम आओ मेरी वीणा तुम्हें बुलाती॥

है सरल स्वयं का दिल हलका कर लेना,
पर इस से जग की व्यथा न कम हो पाती।
शिव सत्य और सुन्दर बन कर तुम आओ,
तुम आओ मेरी वीणा तुम्हें बुलाती॥

अधूरा वह ही लक्ष रहा !

बड़े-बड़े आघातों को भी फूल समझ झेला,
सारा जीवन शूल धूल के साथ-साथ खेला,
पर जिस के कारण अब तक इतना संघर्ष सहा।
अधूरा वह ही लक्ष रहा॥

आंखों से दिखता है पर कर पकड़ नहीं पाते,
चरण शिथिल होते हैं दो डग पहले रुक जाते,
जिस को छू लेने को नयनों से जल-कोष बहा।
अधूरा वह ही लक्ष रहा॥

भावों के तिनकों से मंदिर का निर्माण हुआ,
जिसे देख करके ही पुलकित था भगवान हुआ,
किन्तु ध्यान आते ही जिसका एकाएक ढहा।
अधूरा वह ही लक्ष रहा॥

दूर है उपसंहार अभी !

'ग-मंच को छोड़ अभी से नायक कहाँ चले।
दूर है उपसंहार अभी॥

छोटी-सी नौका ले तट पर अभी बिहार किया,
अभी एक भी बार नदी को है कब पार किया,
तूफानों का वेग लिये झंझा से गले लिपट –
पड़ा है पारावार अभी।

अभी भैरवी बजी, बजी महलों में शहनाई,
अभी जवानी कब तड़फी कब आहें चिल्लाईं,
गीतों के ही मर्म-तंतु से अभिनय बंधा नहीं—
शेष है हाहाकार अभी।

कंधों की तरुणाई का बल बोझा ढोने में,
धूल भरे पथ पर पौरुष के सुमन सँजोने में,
अभी प्रकृति ने मिट्टी से है केवल रूप गढ़ा—
दिया कब अपना सार अभी।

पूछ रहा है जग का कण कण !

इन गीतों का ध्येय भला क्या,
इन गीतों को श्रेय भला क्या,
भर पाये है अब तक कितने यह पीड़ित मानवता के व्रण।
पूछ रहा है जग का कण कण ॥

यह कितनों को समझा पाये,
पोंछ अश्रु कितनों के पाये,
अब तक दे पाये यह कितने व्याकुल हृदयों को आश्वासन।
पूछ रहा है जग का कण कण ॥

बतलाओ मैं क्या उत्तर दूं,
अथवा मैं सच ही सच कह दूं,
इन से केवल शान्त हुआ है मेरे अंतर का आन्दोलन।
पूछ रहा है जग का कण कण ॥

कभी कभी मंजिल पा लेना, चलने से ज्यादा खलता है !

जब की साथ का एक बटोही,
जिससे दो बातें करके ही—
पद ने पथ की पीड़ा खोई,
दिखलाता निज तत्परता है !
कभी कभी मंजिल पा लेना, चलने से ज्यादा खलता है !!

जिससे आगे भेंट असंभव,
है जिसकी ममता के आगे—
फीका लक्ष्य-प्राप्ति का गौरव,
तब फिर रुकना बर्बरता है !
कभी कभी मंजिल पा लेना, चलने से ज्यादा खलता है !!

कल उसको भी ध्येय मिलेगा,
तब तो साथ छूट जायेगा—
प्राणों का आधार हिलेगा,
यही सोच कर पद रुकता है !
कभी कभी मंजिल पा लेना, चलने से ज्यादा खलता है !!

दर्द की पहचान यह आंसू नहीं हैं, हास है !

यदि न पीड़ा हो भला नर मुसकराये क्यों,
हो न व्याकुलता मिलन के गीत गाये क्यों,
अब मुझे तो हो गया विश्वास है !
दर्द की पहचान यह आंसू नहीं हैं, हास है !!

इन्द्र-धनु की कालिमा को धो रही हैं बिजलियाँ,
फूल के कांटे छिपाये डोलती हैं तितलियाँ,
यह अगम जल सिंधु की ही प्यास है !
दर्द की पहचान यह आंसू नहीं हैं, हास है !!

स्वाति-कण करता चिरंतन चातकी की प्यास को,
प्राप्ति ने तोड़ी व्रती की साधना, सन्यास को,
मृत्यु ही दूती बनी प्रति श्वास है !
दर्द की पहचान यह आंसू नहीं हैं, हास है !!

धीरे-धीरे लगी उतरने नभ से भू पर शीत !

सोने चाँदी की किरणें भी उसे न पाईं रोक,
उगते खेतों पर आ बैठी तज देवों का लोक,
ध्वनित अभी भी प्रति सिहरन में तारों का संगीत !

उसने सुरभित करदी अलसित कलियों की मुस्कान,
उसने मुखरित किया सरोवर में अलियों का गान,
विहगावलि ने घोषित की तम पर प्रकाश की जीत !

बनी हुई है यह अगहन की अंगराग सुकुमार,
पूस और कातिक से मिल बनती संगम की धार,
जड़ - चेतन के लिये हुई यह मंगलमयी पुनीत !

बिखर गया नंदन का अवनी पर अनंत अनुराग,
वर्ष - सुमन का आज उदय है ले लो पुण्य पराग,
मेरे कवि गा लो जी भर के अभिनंदन के गीत !

यह पद नहीं रुकेगा फिर भी !

इस पथ पर कोई भी आये,
सुमन बिछाये शूल बिछाये,
तुम आओ, दुनियां आ जाये,
या आये उन्नत हिमगिरि भी !
यह पद नहीं रुकेगा फिर भी !

इस पर कितने सावन बीते,
कितने फागुन के दिन रीते,
अगहन पूस न उससे जीते,
लेकर महाशीत का स्वर भी !
यह पद नहीं रुकेगा फिर भी !

अजय नहीं मिट्टी के बंधन,
नहीं अनश्वर यह दुर्बल तन,
किंतु लिये विश्वास सुदृढ़ मन,
यद्यपि अमिट भाग्य अक्षर भी !
यह पद नहीं रुकेगा फिर भी !

चल रहा है जिन्दगी का कारवाँ !

लक्ष्य पाने का अमिट विश्वास ले !
दर्द साथी आह ही पाथेय है,
गति चरण में है, न कोई ध्येय है,
पंथ में ही प्राप्ति का आभास ले—
चल रहा है जिन्दगी का कारवां !

चल रहा है क्यों कि रुक सकता नहीं,
शूल से भय मान झुक सकता नहीं,
चरण भू पर शीस पर आकाश ले—
चल रहा है जिन्दगी का कारवां !

मृत्यु की घन्टी निरंतर बज रही,
है बिफलता साज अपना सज रही,
साथ में अपने सृजन का नाश ले—
चल रहा है जिन्दगी का कारवां !

अधूरे रह जायेंगे गीत !

नहीं यदि भर पाओगे देव, काव्य के प्रति अक्षर में प्रीति !
निराश्रय और बिना आधार,
खड़ी कब हो पाई दीवार,
बिना पाये कोई भगवान, न होगा मंदिर कभी पुनीत !
अधूरे रह जायेंगे गीत !!

रागिनी में स्वर जैसे बन्द,
और पिंगल में जैसे छन्द,
उसी विधि होगा अगर न लीन तुम्हारी श्रद्धा में संगीत !
अधूरे रह जायेंगे गीत !!

नाव मैं, तुम बन कर्णाधार,
हाथ में लेकर के पतवार,
बता पाये यदि मुझे न देव पार तक जा सकने की रीति !
अधूरे रह जायेंगे गीत !!